जयशंकर प्रसाद और रस सिद्धान्त

डॉ. अंजू शर्मा
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
सनानत धर्म कॉलेज, अम्बाला छावनी।

रस जिसे अब तक हमने भौतिक रूप में ही जाना, जो पंचेद्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है, जो ऐंद्रिय है। मात्र काव्यरस किसी फल का इंद्रियजन्य नहीं, न आलौकिक सुखानुभूति है। यह भौतिकता के परे वह काव्यजन्य आंनद है, जो उदात्त स्पृहनीय भावनीय–मानसिक आनंद को उत्पन्न करता है। भौतिक रस के भावनीय–मानसिक आनंद को उत्पन्न करता है। भौतिक रस के विपरीत काव्यरस का आनंद चिरंतन, दीर्घकालीन होता है। जो सहृदय के हृदय को सत्वोंद्रेक की दशा में प्राप्त होता है। सत्वोद्रेक मनुष्य मन की वह स्थिति है, जिसमें वह लौकिक मोह, माया, घृणा आदि से परे हो जाता है। ऐसे में प्राप्त होने वाली इंन्द्रियानुभूति भी कभी आत्मिक आनंदानुभूति बन जाती है।

परंपरागत अर्थ में रस का अर्थ है – सरसता और उसके कारण प्राप्त होने वाला आंनद। भारतीय परंपरा में रस की धारणा अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन आचार्यों ने रस को जीवन का सार और जीवन को रस के लिए ही परिकल्पित किया है।

<u>रस–व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ</u>

जीवन के समान ही काव्य में भी सरसता आवश्यक होती है। अतः रस के व्युत्पति के संदर्भ में अनेक विद्वान अपने–अपने मतों को प्रस्तुत करते है।

'रसों वै सः' कहकर ब्रम्हत्व का आधान रस में किया है अर्थात् वह रस रूप है, वह ब्रह्म हैं, यह तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है। साधक के चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर अनिर्वचनीय, आलौकिक आंनद की अनुभूति करता है, उसी प्रकार काव्य से भी एक अनिर्वचनीय आलौकिक आंनद की अनुभूति होती है।

संस्कृत के वैयाकरणकार लिखते है – 'रस्यते इति रसः' अर्थात् जिसका आस्वाद किया जा सके, वही रस है। इसी प्रकार 'रस आस्वादन स्नेहयो' अर्थात् स्नेहिल आस्वाद को रस कहा गया है।

रस की ओर एक व्युत्पति में कहा गया है कि –'सरते इति रसः' अर्थात् जो बहे, वह रस है।

रस की द्रव्वशीलता के रूप में शतपथ ब्राह्मण में मधु के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग मिलता है –'रसौ वे मधु'। इसके अतिरिक्त उपनिषदों में प्राप्त एक व्युत्पत्ति अनुसार–'रसः सारः चिदानंद प्रकाशः' अर्थात् रस का सार चिदानंद प्रकाश की उपलब्धि है।

दार्शनिक मत

रस के चार प्रमुख व्याख्याकार हैं – भट्ट लोल्लट, भट्ट शंकुक, भट्ट नायक और अभिनवगुप्त, जिन्होंने रस सिद्धान्त पर व्यापक रूप से अपना मत रखा है।

भरत के सूत्र का सर्वप्रथम व्याख्याता भट्ट लोल्लट हैं।

भट्लोल्लट ने रस का भोक्ता वास्तविक रामादि एवं नट को माना है, रस की स्थिति मूल पात्रों में माना है।

शंकुक ने रस–विवेचन में 'चित्र तुरंग न्याय की संकल्पना की, इससे सामाजिक नट में रस की अवस्थिति मान कर रस का अनुमान करते हैं।

भट्टनायक ने सर्वप्रथम रस को ब्रह्मनन्द सहोदर माना। भट्टनायक ने सर्वप्रथम दर्शक (सामाजिक) की महत्ता को स्वीकार किया।

भट्टनायक ने काव्य की तीन क्रियाएं मानी हैं–

1. अभिधा– काव्यार्थ की प्रतीति, 2. भावकत्व–साधारणीकरण 3. भोजकत्व–रस को भोग

अभिनवगुप्त ने रस की सर्वांगोण वैज्ञानिक व्याख्या की। उनके अनुसार स्थायी भाव सहृदय या सामाजिक के हृदय में वासनारूप से (संस्कार के रूप में) पहले से ही (अव्यक्त रूप में) विद्यमान रहते है।

जयशंकर प्रसाद का रस सिद्धान्त में योगदान

अभिनवगुप्त के जिस प्रत्यभिज्ञा दर्शन की स्थापना की, प्रसाद ने उसी को आधार बनाकर कामयानी जैसी कालजयी कृति की रचना की। अभिनवगुप्त ने अपने ध्वन्यालोकलोचन में लिखा है कि वस्तु और अलंकार

ध्वनियां भी अंततः रस रूप ले लेती है। इसी प्रकृत आनंद रस को उपनिषदों में आत्मतत्व कहा गया है। शैवॉहत की दार्शनिक अनुभूति को हम दूसरे शब्दों में आनंदवादी रहस्यवाद भी कह सकते हैं। प्रसाद का काव्य मुख्यतया इसी आनंदवादी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर टिका हुआ है।

युग प्रवर्त्तक जयशंकर प्रसाद और आचार्य अभिनवगुप्त के काल के बीच लगभग हजार वर्षों का अंतर है। यह अंतर भौगोलिक स्तर पर भी है। लेकिन, दोनों में एक अद्‌भुत साम्य है, वह है उनकी विचारप्रीठिका पर। अभिनवगुप्त का प्रभाव सैकड़ों वर्ष बाद भी जयशंकर प्रसाद के मुख से प्रस्फुटित हो रहा है। प्रसाद का महाकाव्य 'कामायनी' अभिनवगुप्त के 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का ही एक काव्य रूप है। कामायनी ग्रंथ का स्तर शैव दर्शन के आनंदवाद पर आधारित है। चिंता से आंनद तक पहुंचना कैसे संभव हो, यही कामायनी का मूल प्रतिपाद्य है। कामायनी छायावाद की उत्कृष्ट रचना है। विचारकों का मानना है कि इसका निर्माण छायावाद की प्रौढ़ बेला में हुआ है और यह छायावाद के प्रवर्त्तक महाकवि जयशंकर प्रसाद की गहन अनुभूति और उन्नत अभिव्यक्ति की साकार प्रतिमा है। इस कारण इसमें छायावाद की सम्पूर्ण उन्नत और श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का मिलन नितान्त स्वाभाविक है।

कामायनी को रूपक काव्य भी कहा गया है। महाकाव्य की प्रवृति जहां बर्हिमुखी होती है, वहीं रूपक की अंतमुर्खी होती है। इन दोनों का सांमजस्य कैसा होगा?

कामायनी मानव–चेतना के विकास का महाकाव्य है या मानव सभ्यता के विकास का विराट रूपक है। इसलिए इसका अध्ययन उसके रसास्वाद की प्रक्रिया का एक अंग है। कामायनी के संदर्भ में रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि किसी एक विशाल भावना को रूप देने की ओर भी अंत में प्रसाद जी ने ध्यान दिया, जिसका परिणाम है कामायनी, इसमें उन्होंने अपने प्रिय आनंदवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बनाकर की है। यह आनंदवाद बल्लभाचार्य के कार्य या आंनद के ढंग पर न होकर योगियों और तांत्रिकों की अंतभूमि पद्धति पर है। मानवता की आधारशिला पर टिका हुआ यह महाकाव्य एक तरफ जहां श्रद्धा और मनु के माध्यम से सृष्टि के विकास की कहानी कहता है, वहीं दूसरी तरफ रूपकों के माध्यम से मानवता के चरम विकास को भी

मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक धरातल पर प्रस्तुत करता है। कामायनी एक सफल कृति है जिसमें जीवन की ज्वलंत समस्याओं का अद्‌भुत और सटीक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

जीवन का अंतिम भाव आंनद है। आंनद की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील मानव अनेक संघर्षों से गुजरता है। आंनद स्वर्ग के निर्माण में प्रसाद जी ने शैवदर्शन का अत्यधिक आश्रय लिया है। शैवागम के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से ही प्रसाद ने समरसता सिद्धांत की परिकल्पना की। शैवदर्शन के अनुसार शिव आनंदस्वरूप हैं। कामायनी में श्रद्धा की शक्ति के रूप में परिकल्पना की गई। कश्मीरी शैवागम प्रधानतया अद्वैतवादी है जहां पर परम अद्वैव सत्ता आत्मा है जिसको परा संवित शिव परमेश्वर या परमशिव के नाम से भी विभूषित किया जाता है।

प्रसाद का 'आनंदवाद' सर्ववाद सिद्धांत पर टिका हुआ है जिसे हम वैदिक अद्वैत के रूप में भी समझ सकते हैं। प्रसाद जी का यह सर्ववादी सिद्धांत आचार्य शंकर द्वारा प्रवर्तित अद्वैत सिद्धांत से पूर्णतया भिन्न है। आनंदवादी आचार्य अभिनवगुप्त जिस प्रकार एक ही अभेदमय आनंद रस को मूल रस मानते हैं, वैसे ही कामायनीकार की आस्था भी शैवागम के आनंद रस से प्रभावित इसी एकरस सिद्धांत में थी।

कुछ आलोचक कामायनी के रहस्य सर्ग में प्रत्यभिज्ञादर्शन के सामरस्य सिद्धांत का स्पष्ट रूप प्रभाव मानते हैं।

यह कहा जा सकता है कि कामायनी का प्रमुख दर्शन शैवमत का आनंदवाद है। प्रसाद जी मूलतः एक दार्शनिक रहस्यवादी कवि है। वे अपनी रचनाओं में इस जीवन के सत्य रहस्य को प्रमुखता से स्वीकार करते हैं। यही रसमय रूप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसमें कला और सत्य दोनों की अद्वैतता विद्यमान है। उनका काव्यदर्शन विशुद्ध ध्वनिवादी है। रस के प्रसग में प्रसाद उदाहरण देते हुए करते है – ''अलंकार , रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि आदि के साहित्य सम्प्रदाय, विवेकमत की उपज है, अकेला रसमत ही आनन्द उद्‌भूत है।''

प्रसाद ने 'नाटकों' मे रस का प्रयोग 'निबंध' में लिखा है – ''आत्मा की अनुभूति व्यक्ति और उसके चरित्र–वैचिन्य को लेकर ही अपनी सृष्टि करती है। भारतीय दृष्टिकोण रस के लिए इन चरित्र और व्यक्ति–वैचिन्यों को रस का साधन मानता रहा, साध्य नहीं।''

दार्शनिक रहस्य और ध्वनि एक दूसरे पर परस्पर आश्रित हैं। काव्य का अभीष्ट रस आनंद ही है जिसे काव्य की आत्मा भी माना गया है।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. डॉ गणपतिचन्द्र गुप्त, रस–सिद्धान्त का पुनर्विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. डॉ. देशराज सिंह माटी, भारतीय एंव पाश्चात्य काव्य–शास्त्र, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।
3. शोध प्रबन्ध, भारतीय संगीत में लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध, इलाहाबद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. साहित्यशास्त्र (भारतीय एवं पाश्चात्य), लक्ष्मी पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
5. रस–सिद्धान्त, डॉ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
6. डॉ. आनन्द प्रकाश दिक्षित, रस–सिद्धान्त स्वरूप–विश्लेषण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।